विकम्पितुम् =संकोच करने के; **अर्हसि** =(तू) योग्य है; **धर्म्यात्** =धर्मभय; **हि** =निश्चय ही; **युद्धात्** =युद्ध से बढ़कर; **श्रेयः** =कल्याणकारी साधन; **अन्यत्** =दूसरा; **क्षत्रियस्य** = क्षत्रिय का; **न** =नहीं; **विद्यते** =है।

अनुवाद

अपने क्षत्रिय धर्म पर विचार करके भी तू यह जान ले कि तेरे लिए धर्ममय युद्ध से श्रेष्ठ दूसरा कोई कल्याण का साधन नहीं है। अतः युद्ध रूपी स्वधर्म में संकोच करने का कोई कारण नहीं है।।३१।।

तात्पर्य

सामाजिक व्यवस्था के चार आश्रमों में सुचारु प्रशासन बनाये रखने वाला द्वितीय आश्रम 'क्षत्रिय' कहलाता है। 'क्षत' पद का अर्थ आघात करना होता है। इसके अनुसार जो संकट से रक्षा करे, वह 'क्षत्रिय' है (त्रायते-रक्षा करना)। क्षत्रियों को वन-मृगया करने की शिक्षा दी जाती थी। क्षत्रिय वीर वन में सिंह को सम्मुख ललकार कर उसके साथ खड्ग से युद्ध करते। मृत सिंह की राजकीय अन्त्येष्ठि की जाती। जयपुर राज्य के नरपति अभी तक इस व्यवस्था का अनुसरण करते रहे हैं। क्षत्रियों को आक्रमण और युद्ध करने की कला में विशेष रूप से शिक्षित किया जाता है, क्योंकि धर्ममय हिंसा भी कभी-कभी अनिवार्य हो जाती है। इसलिए क्षत्रियों के लिए सीधे संन्यासाश्रम ग्रहण करने का विधान नहीं है। राजनीति में अहिंसा कूटनीतिक कौशल हो सकती है, आवश्यक साधन अथवा सिद्धान्त नहीं। धर्म-संहिताओं में उल्लेख हैः

आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसतो महीक्षितः।
युद्धमानाः परं शक्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः।
यज्ञेषु पशवो ब्रह्मन् हन्यते सततं द्विजैः।
संस्कृताः किल मन्त्रैश्च नेऽपि स्वर्गमवाप्नुवन्।

'युद्ध में विरोधी ईर्ष्यालु राजा से संघर्ष करते हुए मरने वाले क्षत्रिय या राजा को मृत्यु के अनन्तर वे ही उच्च लोक प्राप्त होते हैं, जिन की प्राप्ति यज्ञाग्नि में पशुबलि देने वाले ब्राह्मणों को होती है।' अतः धर्ममय युद्ध में वध करने को अथवा यज्ञाग्नि में पशुबलि देने को हिंसा नहीं कहा जाता, क्योंकि उनकी धर्ममयता से सभी लाभान्वित होते हैं। बलि के पशु को विविध योनियों में गमनागमन किये बिना तुरन्त मानव देह प्राप्त हो जाती है और युद्ध में वीरगति को प्राप्त क्षत्रिय याज्ञिक ब्राह्मणों को प्राप्त होने वाले उच्च लोकों में प्रविष्ट हो जाते हैं।

'स्वधर्म' के दो भेद हैं। जब तक मुक्ति नहीं हो जाती, तब तक जीव को मुक्ति के निमित्त से धर्मानुसार शरीर सम्बन्धी कर्तव्यों का पालन करना होता है। मुक्ति के अनन्तर जीव का स्वधर्म देहात्मबुद्धि से अतीत, दिव्य हो जाता है। जब तक जीव में देहात्मबुद्रि है, तभी तक उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि के लिए निश्चित किये गये